GAP भाषा

A MULTILINGUAL JOURNAL OF RESEARCH

(ISSN – 2582-8770)

Globally peer-reviewed and open access journal.

विचार, सिद्धान्त और व्यवहार में सिद्धान्तरचना की भूमिका

डो. दिलीप चारण

प्रोफेसर एवं अध्यक्ष

दर्शन-विभाग

गुजरात विश्वविद्यालय,

अहमदाबाद (गुजरात)

कोलरिज कहते हैं कि विचार या चिंतन करने का अर्थ है - सिद्धांतरचना करना ।

(Coleridge, 1812 : 132)

ज्ञानात्मक विज्ञान और न्युरोफिजियोलोजी के अनुसार चिंतनक्षमता, संकल्पना का सर्जन, सादृश्य, रुपक और स्पष्टीकरण ये सभी क्षमताएँ मानव में जन्म से ही होती हैं । ये क्षमताएँ सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थिति की उपज होते हुए भी व्यक्ति उससे दूर हटके कुछ नया कर सकता है ।

नयी सिद्धांतरचना संभव है परंतु समाजविज्ञानों में सिद्धांतरचना की स्थिति अच्छी नहीं है । द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद से अभी तक परिमाणात्मक पद्धति और गुणात्मक पद्धति में ही समाजविज्ञानों ने अपने को सिमेट रखा है । सिद्धांतरचना या सामाजिक सिद्धांत के क्षेत्र में समाजविज्ञान का कोई विशेष उत्साह देखने को नहीं मिलता । सामाजिक सिद्धांतों में आवश्यकता के अनुरुप नवपल्लवन नहीं हुआ है । सामाजिक सिद्धांत मानव और समाज के महत्वपूर्ण प्रश्नों में मार्गदर्शन देने में सक्षम नहीं है ।

समाजविज्ञान में आनुभविक घटना या अनुभवों को किसी पूर्वस्थापित सिद्धांत में समाहित किया जाता है । कोई उत्तम सिद्धांत या उसके अभिगम को पसंद करके उस सिद्धांत के अनुरुप तथ्यों का चयन किया जाता है जिसके परिणामस्वरुप समाजविज्ञानों में सिद्धांतरचना और अच्छे सिद्धांत का सृजन एक मुश्किल कार्य है । स्थापित सिद्धांतों के कारण सृजनशील सिद्धांतरचना अवरुद्ध होती है जिसके उदाहरण के रुप में हम अनुभववाद और अमूर्तसिद्धांत को रख सकते हैं ।

अनुभववाद वह सिद्धांत है जिसमें तथ्य मुख्य है और सिद्धांत गौण है । वास्तविकता का अस्तित्व संरचना (Structures) के रुप में है ।

अनुभववादी दृष्टि से समाजविज्ञान सिद्धांत तराहें और संरचनाओं के सार रुप ही है । अनुभववाद की दीर्घ परंपरा हमें समाजशास्त्र, मानसशास्त्र, राजनीतिशास्त्र इत्यादि समाजविज्ञानों में मिलती है । आज के युग में तथ्यों को बिगडेटा के रुप में देखा जाता है । स्थिति यह भी है कि डेटा स्वयं बोलता है । एन्डरसन (२००८) 'The end of theory' में लिखते हैं कि : 'डेटा की भरमार के कारण वैज्ञानिक सिद्धांत जड़ हो जाता है ।' (Swedberg, 2014 : 15)

अनुभववाद की तरह अमूर्त सिद्धांत भिन्न रुप में पेश होता है । अमूर्त सिद्धांत की कुछ लाक्षणिकताएँ निम्नलिखित हैं :

(१) अमूर्त सिद्धांत एक बृहद सिद्धांत के रूप में प्रस्तुत होता है ।

(२) अमूर्त सिद्धांत आनुभविक वास्तविकता से संलग्न नहीं है ।

(३) डेटा का उपयोग सिद्धांत के रेखांकन के लिए ही किया जाता है ।

(४) अमूर्त सिद्धांत में गैर आनुभविक विश्लेषण किया जाता है ।

Bourdieu के अनुसार यह अमूर्त सिद्धांत का सैद्धांतिक पक्ष है जिसकी रचना अन्य सिद्धांत के संदर्भ में ही रची जाती है। (Bourdieu, 1988 : 774)

अमूर्त सिद्धांत की अन्य आवृत्ति यह है कि समाज विज्ञान स्पष्ट रुप से आनुभविक वास्तविकता के निरीक्षण से प्रारंभ नहीं करता बल्कि वह सिद्धांत से ही प्रारंभ करता है। इसका अर्थ यह है कि डेटा का प्रमुख उपयोग सिद्धांत के उदाहरण के लिए ही प्रयुक्त किया जाता है और विश्लेषण गैरआनुभविक ही होता है। इसलिए अमूर्त सिद्धांत को सिद्धांत का सैद्धांतिक पक्ष कहा जाता है।

❒ सिद्धांत विरुद्ध सिद्धांतरचना :

समाजविज्ञानों में 'सिद्धांत' शब्द के साम्प्रत उपयोग के कारण सिद्धांत क्या है - इस विषय में अस्पष्टता पायी जाती है। सिद्धांतरचना को अमूर्त, निरर्थक, गैरउत्पादक (Non-Productive) माना जाता है। Merton Robert K. के अनुसार "One fact is worth a volume of theorizing." (Merton, 1945 : 472)

सिद्धांतरचना की चर्चा समाजविज्ञानों में बहुत कम हुई है। इतना हीं नहीं, सिद्धांत के ढाँचे के विषय में भी बहुत ही गलतफहमी है। Morton ने सिद्धांत के छह उपयोग बताएँ है :

(१) पद्धति,

(२) सामान्य संकल्पना,

(३) संकल्पनाओं का विश्लेषण,

(४) वास्तविकता के बाद का सामाजिक अर्थघटन (Post Factum Sociological Interpretation),

(५) आनुभविक सार्वत्रीकरण, और

(६) समाजविज्ञान का सिद्धांत।

Morton की सिद्धांत की विभावना है कि "तार्किक रुप में आंतर संबंधित विधानों की एक इकाई जिसके द्वारा आनुभविक एकरूपता प्रति फलित हो।" यह आनुभविक एकता आनुभविक परीक्षणक्षम धारणाओं (Hypothesis) द्वारा प्रस्थापित होती है।

रिचार्ड स्वेडबर्ग के अनुसार सिद्धांत की व्यापक विभावना है - किसी हकीकत के स्पष्टीकरण के लिए किये गये विधान है। इस दृष्टिकोण से सिद्धांतरचना एक उपार्जित प्रक्रिया है। (Swedberg, 2014 : 17)

❒ शोध का संदर्भ (Context of Discovery) और प्रामाण्य का संदर्भ (Context of Justification) :

सिद्धांतरचना के अभिगम को शोध के संदर्भ और प्रामाण्य के संदर्भ के अंतर से भी समझा जाता है। इसके द्वारा हम यह जान सकते हैं कि सर्जनात्मक सिद्धांत रचना के क्षेत्र में समाज विज्ञानों में क्यों अल्प चर्चा हुई है। इसकी चर्चा १९३० के दशक में हुई जिसे विज्ञान के दार्शनिक Hans Reichenbach ने प्रारंभ किया और १९३५ मे The Logic & Scientific Discovery में कार्ल पोपर ने उसका खंडन किया। शोध का संदर्भ, घटनाओं (Phenomena) की स्थिति में नया विचार कैसे उत्पन्न होता है उसको अभिव्यक्त करता है। प्रामाण्य का संदर्भ शोध के संदर्भ का अनुवर्ती है। राईशनबाक और पोपर का अभिप्राय यह है कि विज्ञान का दर्शन सैद्धांतिक रूप से शोध के संदर्भ में क्या

हुआ - यह जानने में असमर्थ है । इतना ही नहीं, यह विज्ञानदर्शन का विषय भी नहीं होना चाहिए । इसके लिए उनका तर्क यह था कि तर्कशास्त्र या तर्क अच्छे विचार क्यों आते हैं इसके अन्वेक्षण के लिए अपर्याप्त है । राइशनबाक (१९५१-२३१) के अनुसार “The Act of Discovery Escape Logical Analysis” शोध की प्रक्रिया तार्किक विश्लेषण के दायरे में नहीं आती । (Reichenbach, 1951 : 231) विचारों का उपार्जन विज्ञान के द्वारा समझा नहीं जा सकता । पोपर के अनुसार यह आनुभविक मनोविज्ञान के द्वारा समझाया जा सकता है । (Popper, 1935 : 4-5)

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद सिद्धांत के परीक्षण में परिमाणात्मक पद्धति समाजविज्ञान में तीव्रगति से विकसित हुई । सांप्रत में गुणात्मक पद्धति तीव्रगति से विकसित हुई है । नये विचार के सृजन के प्रश्न को समाजविज्ञानों ने अनासक्त भाव से देखा है जिनके फलस्वरुप सिद्धांतरचना एवम् सिद्धांत स्वयम् केवल संकेतमात्र बन गया ।

❒ सिद्धांतरचना में व्यवहार निहित है :

सिद्धांत और सिद्धांतरचना को समझने के पूर्व हमें इन दो शब्दों को समझना अतिआवश्यक है । साम्प्रत में Theory यानी सिद्धांत और सिद्धांतरचना दोनो अमूर्त हैं और कार्य (action) से अलग हैं । ईसवी पूर्व चतुर्थ शताब्दी में सिद्धांतरचना का स्वरुप व्यावहारिक था । उस समय सिद्धांतरचना का अर्थ था - देखना, निरीक्षण करना और चिंतन करना ।
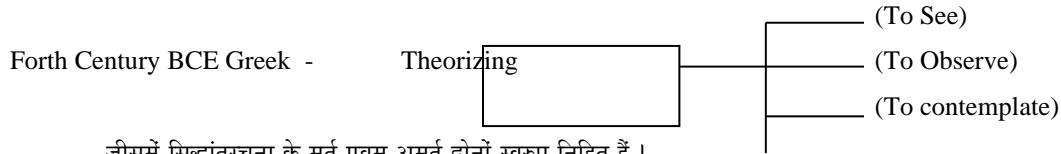
जीसमें सिद्धांतरचना के मूर्त एवम् अमूर्त दोनों स्वरुप निहित हैं ।

ग्रीक Theorien शब्द का समानार्थी है - Theorizing । ‘thea’ – You are to look, the view to look something. ‘horan’ – to see a thing attentively. - वस्तु का ध्यानपूर्वक निरीक्षण करना जिसके आधार पर ‘Theoros’ शब्द बना है - जिसका अर्थ है ध्यानपूर्वक निरीक्षण करना - (Attentive Observer) । परदेश भेजे गये गुप्तचर जो परदेशी लोगों के व्यवहारों का निरिक्षण करें और इस पर ‘theorize’ - सिद्धांतरचना करें । अर्थात् अपरिचित और अनपेक्षित व्यक्ति या समूह की व्याख्या के लिए की गई बौद्धिक रचना को theorizing कहा जाता है । यहाँ हमें ईसापूर्व चतुर्थ शताब्दी में विकसित विचार के नूतन विश्लेषण को समझना चाहिए क्योंकि चिंतन के इस विश्लेषण में विचारणा का हेतु प्रज्ञा (Wisdom) प्राप्त करना था । (Scaff, 2011: 11) हाइडेगर ने इस मूल ग्रीक विभावना की पुनर्रचना करने का प्रयास किया है । हाइडेगर के अनुसार सिद्धांतरचना का अर्थ घटना या तथ्यों पर ध्यान केन्द्रित करना और इसके साथ निकटता बनाना और इस तरह घटना को समझने की कोशिश करना है । (Heidegger, 1977 : 16)

आधुनिक विशेषज्ञों के अनुसार Theory या Theoria का मूल अर्थ विचारणा करना नहीं है । अपितु Theoria का अर्थ संस्थीकरण भी है (Civic Institution) ।

ईसवी पूर्व चतुर्थ शताब्दी में दार्शनिक स्पष्ट रूप से Theoria को ‘Allegory’ – रूपक के रुप में प्रयोजित करते थे या दर्शन के अर्थ के प्रतीकात्मक निरुपण के द्वारा प्राप्त स्पष्टीकरण को ‘theoria’ कहते थे । अर्थात् चिंतन की एक विशिष्ट दृष्टि को ‘Theoria’ कहा जाता था जिसका उदाहरण प्लेटो के ‘गुफा के रुपक’ में हमें मिलता है ।

इसके आधार पर ‘Theories’ शब्द के बारे में दो बातें फलित होती हैं :

GAP भाषा
A MULTILINGUAL JOURNAL OF RESEARCH
(ISSN – 2582-8770)
Globally peer-reviewed and open access journal.
(१) सिद्धांतरचना को मन की व्यावहारिक प्रवृत्ति के रूप में देखा जाता है ।

(२) सिद्धांतरचना मूलभूत रूप से इस प्रकार की प्रवृत्ति है जिसको क्रिया के द्वारा ही सीखा जा सकता है ।

उसे केवल पठन से नहीं सिखा जा सकता । वर्तमान में समाजविज्ञान में पद्धतियों की शिक्षा इसी तरह लेते हैं । इसका अर्थ यह है कि सिद्धांतरचना अमूर्त अध्ययन नहीं है । वह अध्ययन का एक व्यावहारिक पक्ष है । व्यवहार के द्वारा पनपनेवाली प्रवृत्ति है । सिद्धांतरचना के नितांत व्यवहारिक प्रवृत्ति होने के बावजूद इसका अर्थ यह नहीं है कि सिद्धांतरचना के भिन्न स्तरों और निश्चित नियमों को दर्शाए न जा सके । यदि हम उसके निश्चित नियम या निश्चित स्तर को प्रतिपादित कर सकें तो सिद्धांतरचना इससे पर हो सकती है । Dreyfus and Dreyfus का यह स्पष्ट कहना है कि "नियमों का अनुसरण उच्चस्तर पर पहुँचने के प्रयत्न में रुकावट लाता है - और व्यवहार (Practice) को कौशल्य में समेट देता है ।" (Dreyfus and Dreyfus : 1985)

विटगेन्स्टाईन नियमावलंबन के पूर्ण रूप से निषेध का अन्य कारण देते हैं । नियमों में परिस्थितिगत सर्वाश्लेषण नहीं होता । नियमों का उद्‌भव परिस्थितियों में ही पनपता है जहाँ कुछ बातें स्वीकृत ही रहती हैं (Taken for Granted) । नियमों का व्यवहार में विनियोग एक नई परिस्थिति में होता है तब उसका मार्गदर्शन नियमों के द्वारा नहीं मिल सकता ।

अर्थात् नियमों के पालन में अत्यधिक भार देना शोध में बाधारूप है । नियम के दायरे में रहते हुए नई परिस्थिति को शोधार्थी उचित रूप से प्रतिभाव नहीं दे सकता । इस संदर्भ में मेक्स वेबर का कहना है कि "जिस प्रकार शरीरविज्ञान के ज्ञान से यदि कोई व्यक्ति ख़ुद की चलने की प्रक्रिया को नियंत्रित करने का प्रयत्न करता है तो उसके गिरने का भय विशेष रूप से रहता है । उसी तरह व्यावसायिक विशेषज्ञ यदि केवल पद्धतिगत चिंतन से ही अपनी शोध का हेतु निश्चित करता है तो उसे भी वैसी ही मुश्किल का सामना करना पड़ेगा ।" (Weber,1949: 115)

❒ विविध विद्याशाखाओं में सिद्धांतरचना :

विविध विद्याशाखाओं में सिद्धांतरचना अलग-अलग तरीके से होती है - अर्थशास्त्र, विधिशास्त्र, स्थापत्यविद्या, मेडीसन्स, फीजीक्स इत्यादि । एक ही विद्याशाखा में भी सिद्धांतरचना भिन्न-भिन्न तरीके से हो सकती है । इसके कारण भी साम्प्रत युग में सिद्धांतरचना के क्षेत्रों बदलाव आया है ।

इसके परिणामस्वरूप सिद्धांतरचना की प्रक्रिया में समृद्धि (richness) आई है । कोई विज्ञान रुपकों के प्रयोग में प्रभावक रहता है तो कोई विज्ञान स्पष्टीकरण के क्षेत्र में विकास करता है लेकिन इन अंशों को ध्यान में रखकर समाज विज्ञानों में सिद्धांतरचना के सामान्य दृष्टिबिंदु के क्षेत्र में अति अल्प प्रयास किया गया है ।

What needs to be created today is a distinct body of practical knowledge about theorizing and also a full-scale tradition of the origin in social science.
(Swedberg, 2014 : 22)

सच बात तो यह है कि समाजविज्ञानों में सिद्धांतरचना किस प्रकार होती है या होनी चाहिए उसका व्यवहार या सर्जन कैसे होना चाहिए, उसके विषय में कुछ भी किया गया नहीं है । समाजविज्ञान में सिद्धांतरचना के लिए हमें दर्शन, भौतिकशास्त्र, विधिशास्त्र और अन्य विज्ञानों से बहुत कुछ सीखना होगा । इसमें कला को भी हमें शामिल करना होगा क्योंकि कलाओं में जिस प्रकार चिंतन या विचार होता है वह समाजविज्ञान के लिए बहुत ही प्रस्तुत है । कला में

GAP भाषा

A MULTILINGUAL JOURNAL OF RESEARCH

(ISSN – 2582-8770)

Globally peer-reviewed and open access journal.

परिवर्तन के लिए जो जागृति है वैसी जागृति हमें दिखानी चाहिए । हम जो नये सिद्धांतरचना की बात कर रहे हैं वह स्थित नहीं है । फ्लुएन्ट नहीं है और अभी तक उसका स्थापन नहीं हुआ ।

पुरातन सिद्धांतरचना समाजविज्ञान में तात्विक परंपरा पर अधिकाशत: आश्रित है जिसके अनुसार सिद्धांत या सिद्धांतरचना स्वारुपिक, तार्किक और पुरातन ज्ञानमीमांसा पर निर्भर है । नूतन प्रकार की सिद्धांतरचना जिसे हम पुरस्कृत कर रहे हैं वह चिंतन के अनेक रुपों को स्वीकार करती है-Phenomenology, Hermeneutics, Critical Theory, Epistemic Geneology, Deconstruction and Post Modernism. यहाँ चिंतन की रीतियाँ पुरातन स्वरुपात्मक/शैपिक रूप से परे हैं जिसमें ज्ञानात्मकविज्ञान की भी आवश्यकता है जिससे समाजविज्ञानों में नये प्रकार की सिद्धांतरचना के सृजन का प्रयत्न हो सके । ज्ञानात्मक विज्ञान संकल्पनाओं के स्वरुप, सादृश्य आदि उपयोग में समाज विज्ञानों से अधिक अग्रसर है और सिद्धांतरचना के प्रकल्प में उसकी अनिवार्यता भी है ।

❒ पूर्वभ्यास और इसके सोपान (The Prestudy and its Stages) :

प्रश्न यह है कि सिद्धांतरचना किस तरह अच्छे ढंग से प्रयुक्त की जाए । समाजविज्ञान विषयक शोध को Problem, Research & Soltuion - इन तीन प्रविधि में समेटा गया है परंतु इससे किसी नूतन अभिगम का विकास नहीं होता । संशोधन के नूतन रसपूर्ण फलितार्थ के लिए संशोधक के पास सिद्धांतरचना की स्वयं की निपुणता अपेक्षित है । ऐसा बनता नहीं हैं । इसका कारण यह है कि संशोधन का आरंभ बहुत मर्यादित विचारों से होता है ।

संशोधन के आरंभ में शोधकर्ता स्वयं के नूतन विचार प्रगट करने चाहिए जिससे हकीकतों के साथ योग्य परामर्श हो सके । यह सोपान रिसर्च डिजाइन के पूर्व होना चाहिए । वह पूर्वाभ्यास का सोपान है । समाज विज्ञानों में Pilot Study जिसे हम टेन्टेटीव / अस्थाई सिद्धांतरचना जिसका उपयोग मुख्य अभ्यास में हो सके । सिद्धांतरचना के लिए मुख्य दो सोपान अनिवार्य हैं । एक पूर्वाभ्यास और दूसरा मुख्याभ्यास । प्रथम सोपान रिसर्च डीजाइन की रचना के पूर्व अस्तित्व में आता है और दूसरा सोपान रिसर्च डिजाइन के फलितार्थों और संशोधन के प्रश्नों के उत्तर का परिणाम है । इन दोनों सोपानों में सिद्धांतरचना का स्थान है ।

इस दृष्टि से सिद्धांतरचना को संशोधन प्रक्रिया में हमें विशिष्ट और पर्याप्त स्थान देना चाहिए । सिद्धांतरचना महद् अंश में अन्त:स्फूरित है और जो प्रतिभासंपन्न हैं वे ही उसको उजागर कर सकते हैं । समाज विज्ञानों में अल्पप्रगति की यह रसीद है । समाजविज्ञान में सिद्धांतरचना मुख्य संशोधन के समय ही महद् अंश से होती है । या संशोधन की परिसमाप्ति के समय ही होती है । "अच्छी सिद्धांतरचना करना मुश्किल है । सिद्धांतरचना को किसी भी प्रकार की गलतफहमी से दूर रखना चाहिए । सिद्धांतरचना में विचार का प्रस्फुटन हो या न भी हो ।" (Weber, 1946 : 136)

पूर्वअभ्यास में हम निरीक्षण से प्रारंभ करते हैं । समाज विज्ञानों में सिद्धांतरचना के दो विभाग हैं :

(१) पूर्वाभ्यास, और

(२) प्रमुख अभ्यास

(१) पूर्वाभ्यास में अपनी रुचि के विषय जो हमें लालायित करते हैं उनका निरीक्षण करना चाहिए । तत्पश्चात सिद्धांतरचना करनी चाहिए और इस सिद्धांतरचना की परिसमाप्ति कामचलाऊसिद्धांत के स्पष्टीकरण से होनी चाहिए ।

(२) मुख्य अभ्यास - जिसमें मुख्य संशोधन और उसका प्रामाण्य होना चाहिए । संशोधन के प्रश्न पर संशोधन की आकृति निर्माण करनी चाहिए । संशोधन की आकृति का अमल करना चाहिए और पुन: सिद्धांतरचना करनी चाहिए ।

सिद्धांत और सिद्धांतरचना को व्यापक अवकाश (Space) देना चाहिए । पूर्वाभ्यास में चाबीरूप प्रवृत्ति कौन सी होनी चाहिए और समाजविज्ञान के संशोधन में सिद्धांतरचना को सृजनात्मक रूप कैसे दिया जा सकता है, उसकी चर्चा हम करेंगे । सिद्धांतरचना 'Utopia' नहीं है, यह प्रतीति समाज विज्ञानों में पाथब्रेकिंग होगी । सिद्धांतरचना के सृजन में हमें क्षमता प्राप्त करनी होगी ।

अच्छी सिद्धांतरचना करने के लिए हकीकतों का होना परम अनिवार्य है । इस अनिवार्यता को हमें टटोलना होगा । समाजविज्ञान में किस प्रकार का डेटा सिद्धांतरचना में सहायक है, उसकी चर्चा होनी चाहिए । संशोधन प्रक्रिया के प्रारंभिक चरण में 'घटना' का आनुभविक अध्ययन करना चाहिए । डेटा के अभाव में सिद्धांतरचना करना असंभव है । हमें किसका अभ्यास करना है और उस अभ्यास के लिए अनिवार्य निरीक्षण क्या है, उसकी दृष्टि होनी चाहिए । संशोधक के अपने भिन्न अभिगम होने के कारण सहज रुप से संख्यात्मक और गुणात्मक डेटा दोनों का मिश्रण होता है । यहाँ डेटा संचय का संदर्भ सामाजिक डेटा है जिसका अर्थ है - सामाजिक जीवन, लोगों और समूह के बीच का संबंध (कोम्युनिटीज), समुदायों ओर समाजों के बीच क्या घटित होता है यह सामाजिक डेटा है । डेटा का सामान्य पक्ष और सामाजिक डेटा का तफावत बहुत कम, अल्प महत्व रखता है, यह एक भूल है । सामाजिक डेटा क्या है, इस पक्ष में हमारी दृष्टि रहनी चाहिए । अर्थात् सिद्धांतरचना करने के लिए हमें सामाजिक सिद्धांतों का भी ज्ञान होना चाहिए जिसका उपयोग हम सिद्धांतरचना में प्रयुक्त कर सकते हैं । दूर्खाईम के अनुसार संशोधन के प्रारंभ में हमें यह प्रतीति होनी चाहिए की हमें घटना के प्रति कुछ भी जानकारी नहीं है । वह ऊपरी जानकारी, नगण्य भी नहीं होनी चाहिए । संशोधक को अपने पूर्ण अज्ञान से पूर्ण अवगत रहना चाहिए । जिसको अन्य शब्दों में कहें तो हम जो विचार करते हैं, उससे यह विचार, पूर्ण रूप से भिन्न है । सर्वप्रथम तो हमें अपनी पूर्व संकल्पनाओं को खारिज करना चाहिए । (Durkheim, 1964 : 31)

दूर्खाईम का यह विचार अभ्यास की पूर्व अवस्था के लिए उपयुक्त है । समाजविज्ञानी को दो सतहों को छोड़कर आगे बढ़ना चाहिए और वे दो सतहें हैं अनुभववाद और सामान्य सिद्धांत (General Theory) जिसका परित्याग करने से नई संकल्पना की आवश्यकता महसूस होगी । हकीकतों को अलग सिरे से देखना होगा । समाज विज्ञान यदि यह कर पाया तो निश्चित रुप से अनुभववाद और सामान्य सिद्धांत के पाश से वह मुक्त होगा ।

C.W. Mills ने समाजविज्ञान की द्विधा को आकारित किया था जिसे हम समाजशास्त्रीय परिकल्पना (The Sociological Imagination) कहते हैं । C.W. Mills ने दो रास्ते बताए हैं । एक रास्ता कल्पनाशीलता को पूर्ण मुक्ति देने का है और दूसरा रास्ता समाजविज्ञान की प्रशिष्ट दृष्टि है जो समाज के महत्वपूर्ण प्रश्नों पर ध्यान केन्द्रित करता है ।

१९६० और १९७० में इस द्विधा का हल अलग ढंग से देने का प्रयास Zhao (1996) Willer (1996) ने किया जिसे हम रचनावादी सिद्धांत (Theory Construction) के नाम से जानते हैं जिसका मुख्य विचार यह है कि सिद्धांत को एक पद्धति के रुप में देखा जाए । जिस प्रकार सिद्धांत संचय करने की पद्धति के लिए हमें स्पष्ट और व्यवस्थित रहना चाहिए उसी तरह सिद्धांत के बारे में भी हमें स्पष्ट और व्यवस्थित होना चाहिए । अर्थात् सिद्धांत दिया गया विचार नहीं है (It is not a thought given) । व्यवहारिक समाज विज्ञानों के लिए रचनावादी सिद्धांत (Theory Construction) एक अच्छा सिद्धांत है ।

रचनावादी सिद्धांत और सर्जनवादी सिद्धांतरचना दोनों में एक बात समान है कि सिद्धांत केवल अन्त:स्फूरणा से प्राप्त नहीं होता और सिद्धांत को कुछ महत्वपूर्ण चिंतकों (मार्क्सवाद या पूँजीवाद) तक ही वे सीमित रखना नहीं चाहते । सिद्धांत एक विचारपूर्ण संरचना है ।

रचनावादी सिद्धांत के दृष्टिकोण में कुछ मर्यादा भी है । उसकी प्रमुख मर्यादा यह है कि रचनावादी सिद्धांत सामान्य चिंतन के प्रति दुर्लक्ष रखता है । उसकी पसंदगी तार्किक विचार से ही है । उसका तात्पर्य यह है कि रचनावादी सिद्धांत का अचेतन से कोई (लिंक) संबंध नहीं है । इनोवेशन – नवसर्जन के लिए भी कोई अवकाश नहीं है । इस अभिगम में ज्ञानात्मक मनोविज्ञान की कोई सामग्री ध्यान में नहीं ली गयी । ज्ञानात्मक मनोविज्ञान की सामग्री के बिना यह अभिगम एक प्रकार की विधि के रूप में ही रह जाता है । उसकी एक अन्य मर्यादा यह है कि उसमें नए आनुभविक उपादान की गुंजाइश नहीं है ।

संशोधन का आरंभ रसपूर्ण धारणाओं के उपार्जन से होना चाहिए जिनका परीक्षण हो सकें । सफल संशोधन का आधार रसपूर्ण प्राक्कल्पना की संख्या से है जिसका हम शोध कर सकतें हैं और उसको सही तरह से निभा भी सकते हैं । इसके लिए आवश्यकता है 'घटना' को अनिवार्य रुप से सूक्ष्मता से देखना । हमें घटना की बहुत सारी जानकारी या ज्ञान होना चाहिए । आवश्यकता यह है कि जिसका अभ्यास हम कर रहे है, उस विषय या घटना का गहन और तलस्पर्शी ज्ञान होना चाहिए । सिद्धांतरचना अपने में गहन निरीक्षण की अपेक्षा रखता है । Merton के अनुसार व्यक्त सिद्धांत के सृजनशील अंश को जब हम बढ़-चढ़ कर व्यक्त करते हैं तब हम अंततः निरीक्षण की सृजनात्मक भूमिका का अवमूल्यन करते हैं । (Merton, 1948 : 506) आनुभविक संशोधन में प्राक्कल्पना और परीक्षण के मोडल-प्रतिमान जिसे हम Logical Model कहते हैं वह वास्तव में अच्छे संशोधन के उपार्जन में विघ्नरूप है । संशोधन में वास्तविक रुप से क्या होता है, यह इस मोडल से प्राप्त नहीं होता । उसमें संशोधन के अनुभव का वर्णन और बोध है । Merton कहते हैं कि मेरी केंन्द्रीय धारणा है कि आनुभविक संशोधन में निरीक्षण और परीक्षण की निष्क्रिय भूमिका है । उसकी भूमिका प्राक्कल्पना की स्वीकृति या अस्वीकृति से है । संशोधन एक सक्रिय भूमिका अदा करता है । सिद्धांत के विकास के लिए संशोधन की सक्रिय भूमिका चार प्रकार से कार्यान्वित होती है :

(१)	प्रारंभ	-	Initiation	
(२)	पुनर्रचना	-	Reformulation	
(३)	नूतन आयाम	-	Deflection	
(४)	स्पष्टता	-	Clarification	(Merton, 1948 : 506)

Merton जो बात नहीं रख सके वह है निरीक्षण सिद्धांतरचना के प्रथम सोपान की रचना करता है । यह अंश सिद्धांतरचना के लिए अतिआवश्यक है । निरीक्षण का मुख्य हेतु नूतन (Heuristic) शोध है । यहाँ निरीक्षण को हमे व्यापक रूप में लेना चाहिए । निरीक्षण करने की अनेक रीतियाँ हैं । उसमें से किसी का भी आगे के संशोधन में उपयोग हो सकता है ।

यहाँ निरीक्षण का मुख्य उद्देश संशोधन के विषय में व्यापक जानकारी और बहुपार्श्विक जानकारी देना है और घटना को नए सिरे से देखना है । संशोधन का प्रारंभ और इसमें निहित जानकारी अनेक स्रोतों से आनी चाहिए । वह इन्टरव्यू, आर्काइव, न्यूजपेपर, बारकोड्स (Barcodes), आत्मकथानक, ड्रीम्स, चलचित्र, काव्य, संगीत ऐसे किसी भी स्रोत जो घटना के बारें में कुछ कहते हों, इन सभी का समावेश होना ही चाहिए । यह जरुरी नहीं है कि प्राप्त जानकारी विश्वसनीय रुप से ही प्राप्त हुई हो । इसमें प्राप्त पद्धतियों की मदद होनी ही चाहिए ऐसा भी नहीं है । यदि इस निरीक्षण के स्टेज को हम नियम में रख सकें तो वह कहना चाहिए कि वस्तुए जैसी दिखती हैं वैसी नहीं हैं । दूसरी बात यह है कि हम कोई भी डेटा या सूचना का उपयोग कर सकते हैं जो प्राप्त पूर्व संकल्पनाओं से ऊपर उठनें में सहायक हो । सामग्री संपादन इस स्टेज पर सिद्धांतरचना की प्रक्रिया में विशिष्ट और सापेक्ष स्वतंत्रता रखता है । मटीरीयल का विश्लेषण हमें आरंभ में नहीं करना चाहिए, जब तक घटना के पक्ष में हमें बहुत सारी जानकारी प्राप्त न हो । विटगेम्स्टाईन की फीलोसोफाईजिंग के संदर्भ में जो बात कही गई है वह यहाँ

GAP भाषा
A MULTILINGUAL JOURNAL OF RESEARCH
(ISSN – 2582-8770)
Globally peer-reviewed and open access journal.
ज्ञान: अध्ययन: परम्परा

भी प्रस्तुत हो सकती है । 'Do not think but look'. (Wittgenstein, 1953 : 66)

संशोधन की पसंदगी में रुचि का महत्व है । इसके बारे में Murrey Davis उनके 'That's interesting' में लिखते हैं कि सर्व रुचिपूर्ण सिद्धांतों, स्वीकृत मान्यता या अभिप्राय का खंडन हो । एक दूसरा पक्ष भी है कि हमें संशोधन रसपूर्ण तभी लगता है जब वह हमारी जिज्ञासा को उजागर – प्रदीप्त करता है । जिज्ञासा एक ऐसी इच्छा है जो तृप्त होने पर ही शांत होती है । जिज्ञासा का संतोष, ज्ञान संपादन से ही होता है । हमें समस्या को संबोधित करना चाहिए क्योंकि किसी को समस्या रुप मानने का अर्थ यह है कि उसका तत्काल निवारण करना संभव नहीं है । (Davies, 1971: 311) चॉम्स्की के अनुसार समस्या का निराकरण ही महत्वपूर्ण है । चॉम्स्की समस्या और रहस्य दोनों में भेद करते हैं । समस्या प्रश्न रुप है उसको हम भिन्न तरीके से आकारित (Formulate) कर सकते हैं । गंभीर परीक्षण से कुछ स्तर तक ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं । जबकि रहस्य में प्रश्न हमारी पकड़ से बाहर रहते हैं । हमारी साधन सामग्री में त्रुटि होती है । उसमें अपूर्णता होती है । (Chomsky, 1991 : 41) थोमस कूहन के अनुसार प्रश्न की रचना वैज्ञानिक के लिए सामान्य विज्ञान द्वारा ही व्याख्यायित होती है । एक विचारविश्व में निश्चित विषय प्रश्नरुप बनते हैं । इन समस्याओं को वैज्ञानिक रसपूर्वक सुलझाने का प्रयास करते हैं । हर्बर्ट सीमोन के अनुसार वैज्ञानिक समस्या का हल लाता है । डयुई की उक्ति है कि यदि समस्या का योग्य रुप से निरुपण किया गया हो तो वह स्वयं में आधी तो सुलझ जाती है । (Dewey, 1938 : 108) मेर्टन के अनुसार समस्या को सुलझाने से समस्या रचना करना ही एक मुश्किल कार्य है । सी. एस. पीयर्स के अनुसार वैज्ञानिक वस्तु के निरीक्षण से आरंभ करता है । सही प्रश्न की पसंदगी यहाँ महत्वपूर्ण है परंतु पर्याप्त नहीं है, क्योंकि हमें अभ्यास के लिए हकीकतों की आवश्यकता है । संशोधन के लिए व्यूहात्मक सामग्री होनी चाहिए । (SRM – Strategic Research Materials) आनुभविक सामग्री जो घटना का स्पष्टीकरण और अर्थघटन करता है वह लाभप्रद संशोधन के लिए आवश्यक है । (Merton, 1987 : 10-11) संशोधन की समस्या कैसे उत्पन्न होती है, उसका आरंभ कैसे होता है वह जान लेने के पश्चात प्रारंभिक निरीक्षण के स्तर पर तीन बातें महत्वपूर्ण हैं :

(१) प्रारंभिक निरीक्षण मुक्त रुप से होना चाहिए ।

(२) सिद्धांतरचना को कुछ समय तक स्थगित करना चाहिए ।

(३) अध्ययन का विषय हमें संशोधन के प्रति प्रोत्साहित करे, ऐसा होना चाहिए ।

❐ वर्णन और निरीक्षण

वर्णन और निरीक्षण किसी भी अर्थ में समानार्थी नहीं है । वर्णन का महत्व निरीक्षण और सिद्धांतरचना में है । वर्णन हकीकतों को संचय करने में सहायरुप है । वर्णन का संबंध तत्काल रुप से सिद्धांत से जुड़ा नहीं है । समाजविज्ञानों में वर्णन को विश्लेषणात्मक चिंतन से निम्न माना गया है । वर्णन अवैज्ञानिक और अनिच्छनीय है । अमर्त्य सेन 'Description as Choice' में लिखते हैं कि वर्णन महत्वपूर्ण और मुश्किल प्रवृत्ति है । उसका मुख्य कारण वर्णन करनें में पसंदगी निहित है । वर्णन में किस पर ध्यान देना और किसकी अवहेलना करना, यह पसंदगी पर निर्भर है । वर्णन करने की प्रवृत्ति का स्वरुप समाज विज्ञान में औचित्यपूर्ण और उपयोगी सिद्धांतरचना को कमजोर बनाती है । (Sen, 1980 : 368)

विटगेन्स्टाईन के अनुसार वर्णन को समझने के लिए वर्णन के प्रकारों को समझना चाहिए क्योंकि वर्णन विशिष्ट उपयोग का साधन है । अपने कक्ष का वर्णन करना और अपनी मानसिक स्थिति का वर्णन करना दोनों एक नहीं हैं । विटगेन्स्टाईन के वर्णन स्वरुप को

समाजविज्ञानी स्वीकार नहीं कर सकते क्योंकि उनका हेतु अलग है । समाजविज्ञान समाज जीवन के जटिल अंशों और बहुत संवेदनशील अंशों का आलेखन करना चाहता है । अनुकान्टवादियों के अनुसार वास्तविकता अनंत माहिती को संजोए रखती है । यदि हमें कुछ कहना हो तो सभान पसंदगी करनी होगी । मेक्स वेबर के अनुसार जो कुछ भी घटित होता है उसका वर्णन करना सैद्धांतिक रुप से असंभव है । इन सभी विचारों का तात्पर्य यह है कि सृजनशील सिद्धांतरचना के लिए हमें ज्यादा सामग्री की आवश्यकता है । नए सिद्धांत की गंगोत्री नयी सामग्री में निहित है । नयी सामग्री विशिष्ट रूप से सिद्धांत रहित है । इसमें वर्णन के साथ ही क्षेत्रकार्य की भी आवश्यकता है क्योंकि क्षेत्रकार्य पूर्वभ्यास के दरम्यान निरीक्षण के लिए उपयोगी है । निरीक्षण के स्तर पर सभी प्रकार की हकीकतें आवश्यक हैं । प्राइमरी डेटा जो क्षेत्रकार्य के द्वारा प्राप्त किया जाता है, वह विशिष्ट है । उसका कारण यह भी है कि हकीकत कैसे उत्पन्न होती है उसका यथातथ वर्णन हमें प्राप्त हो सकता है और वह सैद्धांतिक सिद्धांतरचना नहीं है क्योंकि सका चयन नहीं किया गया । इसलिए क्षेत्रकार्य वर्णन के लिए उपयोगी है । इस प्रकार की समझ से एक प्रश्न यह भी उठता है कि समाजविज्ञानों में पहले हुए अभ्यासों की भूमिका क्या है । उसका कोई महत्व है या नहीं ? इसका स्पष्ट उत्तर है कि वह पूर्वाभ्यास में प्रस्तुत है । यहाँ वह चीजों को नए प्रकाश में देखने की बात है । इसलिए ही हम गैररूढ़िवादी और गैरमताग्रही रूप से प्रस्तुत हों, वह नए निरीक्षण के लिए उपयोगी है । संशोधक पूर्वसिद्धांत से प्रभावित होकर अपनी सृजनशीलता को खो बैठे, यह इच्छनीय नहीं है । हमें सांप्रत साहित्य से अवगत रहना चाहिए । साथ ही, उससे हटकर देखने की दृष्टिसम्पन्नता भी प्राप्त करनी चाहिए । अन्य विषयों का संस्पर्श भी अपनी सर्जनात्मकता को उदीयमान करने में प्रभावक महत्व रखता है । हमें दृष्टिपूर्णता की आवश्यकता है ।

❒ नामकरण, संकल्पना और टाइपोलोजी :

ए.एन. व्हाईटहेड अनुसार यथार्थ चिंतन पद्धति हवाईजहाज की उड़ान जैसी है । निरीक्षण के धरातल से उसका आरंभ होता है । तत्पश्चात काल्पनिक सार्वत्रीकरण की पतली हवा में उसकी उड़ान होती है और फिर से भूमि पर पुन:निरीक्षण के लिए उसका उतराण (Landing) होता है । बौद्धिक अर्थघटन के द्वारा वह तीक्ष्ण होता है । (Whitehead, 1929 : 4)

एक बार सामाजिक निरीक्षण का स्तर पूर्ण होने के बाद आनुभविक सामग्री से कार्यारंभ होता है । निम्न मात्रा में उसका सिद्धांतीकरण होता है । सिद्धांत की रचना होती है और उसकी संरचना एवम् देह प्राप्त होता है । पीयर्स के अनुसार प्राप्त हकीकतों के उपर मन अपनी प्रक्रिया करता है, उसको सम्मिलित करता है, उसका पाचन भी करता है और उस पर आश्वस्त भी रहता है । इस सबका संमिश्रण करता है और उसके सपने (Dream) देखता है । (Peirce, 1906 : 4-5) तब तक प्रक्रिया शुरु रहनी चाहिए, जब तक सिद्धांतरचना की प्रक्रिया पूर्ण न हो । उसका स्पष्टीकरण प्राप्त न हो तब तक । पीयर्स के अनुसार सामग्री के विलगन एवम् उस सामग्री का मनोचयन महत्वपूर्ण है । जिससे सामग्री को बहुत नजदीकी से जाना जाए । सामग्री का पाचन करना और उस सामग्री का स्पष्टीकरण देना इन दोनों के बीच बहुत कुछ करना होता है । उसमें प्रथम है - अभ्यास का विषय और घटना का नामकरण । विश्लेषण के लिए कुछ संकल्पनाओं का विकास करना और एक प्रकार की टाइपोलोजी विकसित करनी होगी । विवेचन के लिए सादृष्य, रुपक और तराहों का भी उपयोग होता है । सिद्धांतरचना में अग्रसर होने के लिए अलग अलग रास्ते हैं । एक रास्ता व्याप्ति का है । व्याप्ति विशिष्ट उदाहरणों के द्वारा प्राप्त किया गया सामान्यीकरण है । वैज्ञानिक जिस तरह से सामान्यीकरण या सिद्धांतीकरण करता है वह अत्यन्त जटिल प्रक्रिया है । पूर्वाभ्यास की दो भूमिकाएँ हैं : (१) पूर्वाभ्यास से प्रथम तो सिद्धांतीकरण की प्रक्रिया कामचलाऊ सिद्धांत के प्रति अग्रसर होती है और यह कामचलाऊ सिद्धांत विवेचन के इर्दगिर्द रहता है । यह एक अत्यन्त ही महत्वपूर्ण बात है । (२) दूसरी भूमिका सफल सिद्धांतरचना के लिए महत्वपूर्ण है जीसमें शोध द्वारा सिद्धांतीकरण को अग्रसर किया

जाता

है जिसे हम नूतन शोध का कार्य (Huristic Function) कहते हैं जो सिद्धांतरचना की प्रक्रिया का अंश है। सभी सिद्धांतरचना के तत्वों - घटकों का उपयोग नूतन शोध हेतु (Heuristic Purpose) करना चाहिए। सामाजिक घटना का नामकरण भी एक शोध है । संकल्पना की रचना का प्रयास भी एक खोज ही है। सिद्धांत के विकास के लिए हमें निरीक्षण के स्तर पर फिर से जाना पड़ता है। यह सिद्धांत दृढीकरण की प्रक्रिया तो है ही; साथ साथ उसमें नई सामग्री भी संजोई जाती है। सिद्धांतरचना की प्रक्रिया में पुनरावर्तन एक आवश्यक अंश है जिसका महत्व पूर्वाभ्यास में जितना महत्व रखता है उतना ही महत्व मुख्य अभ्यास में भी रखता है। इस स्तर को हम भारतीय चिंतन परिवेश में भूयोभूयोदर्शनाय कह सकते हैं। सामाजिक निरीक्षण के पश्चात का स्तर चिंतन का है। हमें इस बात का खेद भी है कि आज के समाज विज्ञान में चिंतन का बहुत ही कम उपयोग होता है। विज्ञान में निश्चित रुप से चिंतन का स्थान है और उसका कारण यह है कि चिंतन के बिना सृजन संभव नहीं है। चिंतन उस प्रकार की विचारणा है जिसमें अब तक जिसको खोजा नहीं गया उसको खोजा जा सकता है। यहाँ अनिवार्यरुप से कुछ नया देने की संभावना है। इयान होंकींग के अनुसार चिंतनात्मक (speculation) का अर्थ यह है, हमें जिस समस्या में रस है, उसका बौद्धिक प्रतिनिधान जिसमें जगत के सामान्य अंशों की समझ, गुणात्मक समझ दी जाती है जिसके द्वारा विचारों की पुनर्रचना हो सकती है। (Hacking, 1983 : 212-13) पेरीशीश के अनुसार चिंतन केवल एक रमत होने के बावजूद बहुआयामी प्रक्रिया है, उसमें एक अन्य अंश का भी समावेश होता है और वह है अटकल। एक अन्य अंश भी चिंतन में विद्यमान है, और वह है वास्तविकता का अभाव। सिद्धांतकार या चिंतन वास्तविकता से मुक्त होकर अपनें विचारों का मुक्त रुप से वहन करता है। ज्ञानात्मक विज्ञान में चिंतन की समझ के लिए साहित्य है जिसे हमें समझना होगा। हम सादृश्य, रुपक, तराहों का उपयोग किस तरह से करते हैं इस पर विचार करना होगा। ज्ञानात्मक मनोविज्ञान में यह बात स्थापित हो गई है कि मानव केवल स्वरूपिक ढंग से विचार नहीं करता जिसका जीक्र पाश्चात्य दार्शनिकों- प्लेटो और अरस्तू से आधुनिक विश्लेषणात्मक चिंतन में हुआ है। चिंतन सामान्य विचारणा से दूर नहीं है। जिस प्रकार सिद्धांतरचना स्वयम् में दैनंदिन विचार से बहुत दूर नहीं है।

Comment: To theorize in social science you need to know how to theorize in practical terms and to have some theoretical knowledge of what constitutes a concept, an explanation, and the like. Since what is at issue is theorizing in social science, you also need to have acquired a social science perspective and have some knowledge of social science concepts, mechanisms, and theories.

समाजविज्ञान में सिद्धांतरचना का ज्ञान प्राप्त करने के लिए क्या आवश्यकता है। (१) सिद्धांतरचना वास्तव में कैसे की जाए उसका ज्ञान। (२) समाज विज्ञानों में ज्ञान की संरचना कैसे होती है उसका ज्ञान अर्थात संकल्पनाओ, मिकेनिज्म और सिद्धांतों का ज्ञान होना चाहिए।

इन सभी बातों से यह सिद्ध होता है कि।

(१) समाज विज्ञान में सिद्धांतरचना सरल नहीं है।

(२) सृजनशील सिद्धांतरचना के लिए हमें अपने संशोधन में खुलापन लाना चाहिए।

(३) सिद्धांतरचना को संशोधन प्रक्रिया का एक अंश मानना चाहिए जिसमें सिद्धांत परीक्षण को हकीकत के विरुद्ध में देखना अनिवार्य है।

(४) हमें सिद्धांतरचना को प्रि-स्टडी और मुख्य स्टडी में विभाजित करना चाहिए।

(५) समाजविज्ञान में हमें संशोधन में ज्ञानात्मक विज्ञान का सहयोग लेना चाहिए।

(६) हमे समाजविज्ञान में भाषा, अर्थ और वैयक्तिकता की घटना के प्रति सजाग रहना चाहिए।

(७) हमारे विचार या संकल्पना में नवसर्जन आवश्यक है।

इस प्रकार से यदि समाजविज्ञान में संशोधन एवम् चिंतन हो तो समाजविज्ञान में नावीन्य की अपेक्षा हम रख सकते हैं।

सिद्धांतरचना में एक बात महत्वपूर्ण है कि समाजविज्ञान में सिद्धांतरचना के राजकीय और नैतिक परिमाण भी होते हैं। राजकीय और नैतिक संकल्पनाएँ हमारी धारणाओं को भी प्रभावित करती हैं। सिद्धांतरचना को हम परंपरा के रूप में सिद्धांतीकरण की परंपरा के रूप में स्वीकार करते हैं तो हम विषय की परंपरा से बद्ध होते हैं। हम परंपरावादी होते हैं। हमारी राजकीय और नैतिक प्रतिबद्धता रुढ़िवाद एवं मताग्रह पर निर्भर होगी और आदेशपालन ही हमारा नैतिक व्यवहार होगा। जहाँ हमारी स्वंतत्रता नेस्तनाबूद होगी। हमारी आग्रही परंपरा हमें असहिष्णुता और आक्रामकता की ओर अग्रसर करेगी। अन्य को हम प्रतिद्वंद्वी के रूप में देखेंगे। यदि हम सृजनशील सिद्धांतरचना के पक्ष में हैं तो हमारी राजकीय और सामाजिक प्रतिबद्धता स्वतंत्रता और परस्परावलंबिता के ऊपर निर्भर होगी। हमारी राजकीय और नैतिक धारणाएँ लोकतंत्र के पक्ष में होंगी। लोकतंत्र मुक्त विचार और मुक्त पसंदगी को अपने में संजोये रखती है। हमारा पक्ष उदारमतवादी नीति को समर्पित होगा। उदारमतवादी नीति की अपेक्षा यह है कि लोगों की पसंदगी को आग्रह से प्रस्थापित न करके उनकी पसंदगी का गुणात्मक संवर्धन करना। इस व्यवहार से 'अन्य' हमारा प्रतिद्वंद्वी न रहकर 'अन्य' हमारा ही संवेद्य प्रतिरूप बनेगा। ऐसी समाजरचना की अपेक्षा सृजनशील सिद्धांतरचना से ही सिद्धांत एवम् व्यवहार में संवादिता प्रस्थापित करेगी क्योंकि 'अन्य' हमारी ही बिरादरी है। इसलिए समाजविज्ञान की साम्प्रत प्रस्तुतता सिद्धांत और व्यवहार में सृजनशील सिद्धांतरचना का प्रस्थापन करना है और इसके लिए Saranne Weller के अनुसार हमें 'Disciplinary Teacher' से आगे बढ़कर 'Scholarly Teacher' बनना अनिवार्य है जो स्वचिंतनशील हो जो अपने ज्ञान को विस्थापित करना जानता हो। 'If we are inspiring learners willing to challenge ourselves, destabilise what we already know and draw on the knowledge and expertise of those we teacher and those we teach with." (Weller Saranne, 2016 : 229)

REFERENCES

1. Bourdieu, Pierre. 1988. "Vive La crise ! For Heterodoxy in Social Science", *Theory and Society*, 17 : 773-87.

(ISSN – 2582-8770)

Globally peer-reviewed and open access journal.

2. Chomsky, Noam. 1991. “John Dewey’s Idea of Imagination”. *Journal of Aesthetic Education* 25, no. 4 : 43-49.
3. Coleridge, Samual Taylor. 1812. *The Friend : A Series of Essays*. London : Gale and Curtis.
4. Davis, Murray. 1971. “That’s Interesting! Towards a Phenomenology of Sociology and A Sociology of Phenomenology”, *Philosophy of the Social Sciences* 1: 308 -44.
5. Dewey, John. 1938. Logic : *The Theory of Inquiry*. New York : Henry Holt.
6. Dreyfus, Hubert and Stuart Dreyfus. 1986. *Mind Over Machine : The Power of Human Intuition and Expertise in the Era of the Computer*. New York : Free Press.
7. Durkheim, Emile. 1964. *The Rules of Sociological Method*. Trans. S. Solvay and J. Mueller. New York : Free Press.
8. Hacking, Ian. 1983. *Representing and Intervening : Introductory Topics in the Philosophy of Natural Science*. Cambridge, UK : Cambridge University Press.
9. Heiddegger, Martin. 1976. “Science and Reflection”. In Martin Heidegger, *The Question Concerning Technology and Other Essays*. PP. 154-82. New York : Harper.
10. Merton, Robbert K. 1948. “The Bearing of Empirical Research upon the Development of Social Theory”. *American Sociological Review*, 13 : 505-15.
11. Merton, Robert K. 1945. *What is Sociological Theory?* American Journal of Sociology. 50 : 462-73.
12. Merton, Robert K. 1987. “Three Fragments from a Sociologist’s Notebooks : Establishing the Phenomenon, Specified Ignorance, and Strategic Research Materials”, *Annual Review of Sociology*. 13 : 1-28.
13. Peirce, Charles S. 1906.Lecture I of a planned course. Harvard University, Houghton Library, MS 857.
14. Popper, Karl. 1935. *Logic der Forschung*. Vienna : Julius Springer.
15. Reichenbach, Hans. 1951. *The Rise of Scientific Philosophy*. Berkeley : University of California Press.
16. Scaff, Lawrence. 2011. *Max Weber in America*. Princeton, NJ : Princetion University Press.
17. Sen, Amartya K. 1980. “Description as Choise”, *Oxford Economic Papers* 32, no.3 (November) : 353-69.
18. Swedgber, Richard. 2014. *The Art of Social Theory*. Prinction : Prinction University Press.
19. Weber, Max. 1946. “Sceince as a Vocation.” *In From Max Weber*, trans. and ed. Hans Gerth and C. Wright Mills, pp. 129-56. New York : Oxford University Press.
20. Weber, Max. 1949. *Methodology of the Social Sciences*. Trans. and ed. Edward A. Shils and Henry A. Finch. New York : Free Press.
21. Weller, Saranne. 2016. *Academic Practice : Developing as a Professional in Higher Education*. London : SAGE.
22. Whitehead, Alfred North. 1929. *The Function of Reason*. Boston : Beacon Hill.
23. Wittgenstein, Ludiwg. 1953. *Philosophical Investigation*. Trans. G.E.M. Anscombe. New York : Macmillan.